International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

भक्ति भावना की परम्परा में – भक्ति काव्य

डॉ. मिथलेष सिंह राजपूत

सहा. प्राध्यापक हिन्दी
डॉ.सी.व्ही. रमन वि.वि.करगी रोड कोटा बिलासपुर (छ.ग.)

सारांष
साहित्य में भक्ति का सन्निवेश अपने सनातन रूप में ही सम्भव है। भक्ति कोई विचारधारा नहीं है जो बदले। भक्ति मानवीय भावों की उदात्त अभिव्यक्ति है जिसमें प्रेम तो है पर स्वार्थ्य नहीं, शरीर है पर भोग्य नहीं, आनन्द तो है पर सुख नहीं। वह सब कुछ है जो मनुष्य चाहता है पर पाने के लिए नहीं देने के लिए। ईशावास्योपनिषद का यही 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा'' है। भारतीय संस्कृति को सनानत संस्कृति और धर्म को सनातन धर्म कहा जाता है। सनातन का अर्थ है निरन्तरता। निरन्तरता विचारों की। सनातनता नूतन का विरोध नहीं है। नवीन के अनुकूल ढल जाना, एकरस हो जाना समानता का स्वभाव है। भारतीय सनातन संस्कृति की मुख्य विशेषता है विश्वात्मवाद और त्याग। प्राचीनतम उपनिषद ईशावास्योपनिषद का मूल मंत्र किसी के धन का लोभन करके त्यागपूर्वक भोग करना चाहिए क्योंकि इस संसार में जो भी है. ईश्वरमय है। आस्था की इसी बुनियाद पर भारतीय संस्कृति का विकास हुआ है। वैदिक ऋषियों के इस जीवन दर्शन का व्यावहारिक रूप जिन महापुरुषों के जीवन में साकार हुआ है, वे हैं राम और कृष्ण। राम को जहाँ धर्म का विग्रह (रामोविग्रहवान् धर्मः) कहा गया, वहीं कृष्ण को भगवान का पूर्वावतार (कृष्णास्तु भगवान् स्वयं)माना गया। इस प्रकार सनातन संस्कृतिपुरुष राम और कृष्ण हैं जिन्हें महामानव से अद्वैत ब्रह्म के रूप तक संकलित किया गया। अरूप, अनाम और द्वय की सगुण, साकार से एकता तक की यात्रा सनातन संस्कृति का विकास काल है। वेदों ने ब्रह्म, आत्मा और विश्वात्मा तक चिन्तन की सूक्ष्म यात्रा की और ज्ञान, कर्म, उपासना को ब्रह्मज्ञ होने का साधन माना। कर्मकाण्ड की प्रमुखता होने पर सनातन संस्कारों ने पुनः परिवर्तन किया और रामायण और महाभारत के माध्यम से राम और कृष्ण के चरित का गायन हुआ। कर्मकाण्ड और स्वर्ग की कामना में रत मनुष्यों को अपने आचरण से लोकधर्म की शिक्षा देने के लिए ईश्वर का प्राकट्य समाज की आवश्यकता थी। वेदों में वर्णित सूक्ष्म, सर्वव्यापी ब्रह्म अब पृथ्वी पर था। ज्ञान और उपासना तो अज्ञात के लिए थे प्रकट ब्रह्म तो सेवा से सन्तुष्ट है। अवतारवाद से ब्रह्मा जनसुलभ हुआ तो प्राप्ति कामार्ग भी बदला। प्रेम और सेवा दो नए सोपान बने। अवतारवाद और भक्ति का गूढ़ सम्बन्ध है। चारों पुरुषार्थों से भी श्रेष्ठ भक्ति हो गयी। ज्ञान और वैराग्य भक्ति के पुत्र हो गए। यदि ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं तो भक्ति के बिना ज्ञान नहीं। भक्ति की महिमा है कि दर्शन शुष्क न रहकर सरस हो गया और साहित्य में भक्ति समाहित हो गयी।

प्रमुख शब्द – कर्मकाण्ड, उपासना, पुरुषार्थों, संस्कृति, भक्ति, मानवीय

1. प्रस्तावनाः– भक्ति का विकास वैष्णव कवियों एवं दार्शनिक सन्तों के द्वारा हुआ। भक्ति भारतीय चिन्तन की दार्शनिक प्रक्रिया का सरलीकृत रूप है तथा इसके माध्यम से भक्त ईश्वर का साक्षात्कार करने में सफल होता है। इसका शाब्दिक अर्थ है– भगवान की सेवा करना। संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में श्सापरानुरक्तिरीश्वरे अर्थात् ईश्वर में अतिशय अनुरक्ति ही भक्ति है। (शाण्डिल्य भक्तिसूत्र) तथा श्सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा अर्थात् ईश्वर के प्रति परम प्रेम ही भक्ति है। (नारद भक्ति सूत्र) जैसी उक्तियों द्वारा ईश्वर से साक्षात्कार करने के लिए भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। मक्ति के मूलाधार ग्रन्थ श्रीमद्भागवत् में भगवानकृष्ण की भक्ति को सर्वश्रेष्ठ धर्म और निष्काम उपासना को सर्वश्रेष्ठ भक्ति कहा गया है। मध्वाचार्य भक्ति को मुक्ति का सर्वाधिक सुगम साधन मानते हैं। श्भक्ति रसामत सिन्धुश के रचयिता श्री रूप गोस्वामी ने ज्ञान और कर्म के प्रभाव से रहित निष्काम ईश चिन्तन को भक्ति माना है। इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न मतों के अनुसार भक्ति को ऐसा तत्व कहा है, जिसमें ज्ञान और कर्म, जप और तप तथा उपासना और प्रेम एक साथ जुड़े हुए हैं।

2. भक्ति का स्वरूपः– भक्ति के उपर्युक्त शास्त्रीय चिन्तन का उत्कट प्रभाव मध्यकालीन संतों पर पडा और आचार्य वल्लभ तथा रामानुज ने अद्वैत के सिद्धान्तों को क्रमशःशुद्धाद्वैत और विशिष्टाद्वैत के रूप में परिकल्पित करते हुए

वेदान्त में भक्ति का सन्निवेश किया। आचार्य वल्लभ ने रतिभाव को बीज मानते हुए अवतार को पुष्टि का कारण माना और आराध्य कृष्ण के माधुर्य रूप की उपासना पर बल दिया. जिसका व्यापक प्रभाव मध्यकालीन साहित्य पर पड़ा। यद्यपि यह परम्परा जयदेव, विद्यापति और चौतन्य के लीलागायन से ही चल पड़ी थी, किन्तु रागानुगा भक्ति का लालित्य श्भक्ति रसामृतसिन्धुश की रचना के पश्चात् दिखाई पड़ा और इसकी पृष्ठभूमि में आचार्य वल्लभ और उनकी शिष्य परम्परा का योगदान रहा। इन कवियों ने ब्रजभूमि को लीलास्थली बनाते हुए कृष्ण की उसी लीला का गायन किया जो भक्ति के बीजभाव रति से जुड़ी थी। यद्यपि इस परम्परा का समाज के उस वर्ग पर प्रभाव नहीं पडा जो भीषण आतंक से व्यथित था. किन्तु अनीश्वरवादी दृष्टि के विरुद्ध आस्था के उदय एवं आस्तिकता की पुनर्प्रतिष्ठा में इस सम्प्रदाय की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। वस्तुतः कृष्णभक्ति काव्य इस्लाम के उस माधुर्य भाव का सशक्त प्रतिरोध था जो सूफी सिद्धान्तों के माध्यम से हिन्दू जनता को आकर्षित कर रहा था। सूफियों ने इस्लाम के प्रचार के लिए लौकिक कथाओं को अस्त्र बनाया था और हिन्दू जनता के मन में उसके प्रति विश्वास भी था, किन्तु राधाकृष्ण के अनन्य प्रेम के समक्ष इस्लाम का यह षड्यंत्र विफल हो गया।

3. भक्ति भावना की परम्परा और भक्ति काव्यः–

(अ) भक्ति के सोपानः– भक्ति का स्रोत वेद है। वैदिक साधना में भक्ति के मूल तत्व विद्यमान हैं, जिनके कारण इसका प्रचार सर्वाधिक हुआ। उन साधकों ने वैष्णव भक्ति में साधन–त्रय का समन्वय किया जिसने भक्ति पथ और भी प्रशस्त हुआ। अब भगवद् भक्ति ही परम पुरुषार्थ समझी जाने लगी। कहा जाय तो भक्ति का 1 विकास साधना में सुगमता का क्रमिक विकास है। नवधा भक्ति मानों श्शीर्षश या गन्तव्य तक जाने के नव सोपान हैं। अपनी मधुरिमा तथा ही भक्ति साधन और साध्य दोनों समझी जाने लगी। सुगमता के कारणअर्थात् वैदिक युग में विशेष रूप से ज्ञान और कर्मकाण्ड का ही प्राधान्य रहा। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि मनुष्य जीवन के सर्वाधिक आवश्यक तत्त्व श्हृदय–पक्षश को महत्व नहीं दिया जाता था। हृदय तो नित्य बुद्धि केसाथ रहा है। इसीलिए वेद की ज्ञान परक ऋचाएँ भी काव्यात्मक ढंग से ही कही गई हैं।

उपासना परक ऋचाओं में तो हृदय पक्ष ही प्रधान दिखाई पड़ता है। परन्तु, इस रहस्य से अपरिचित पाश्चात्य विद्वानों ने भक्ति के परवर्ती विकसित स्वरूप को देखकर इसे अभारतीय कहने का दुस्साहस किया है। उन्हें यह बोध नहीं हुआ कि ष्ब्रह्म की सृष्टि रूपी काव्य का निर्माता कविष् कहने वाले ऋषि कितने सहृदय थे। और सहृदय ही तो भक्ति करता है।

(ब) वेदों में भक्ति का बीज :–वैष्णव भक्ति के क्रमिक विकास को समझनेके लिए हमें वेद में भक्ति का क्या रूप था इस पर ध्यान देना चाहिए। यह सच है कि भक्ति का जो स्वरूप आज दिखाई पडता है वैसा रूप वेदों में नहीं मिलता, परन्तु बीज रूप में इसका संकेत यत्र–तत्र पर्याप्त रूप में मिलता है। श्रीमद्भागवत में भक्ति के जिन नव प्रकारों का दर्शन होता है वेद भी उन्हें इसी की भूमिका में संकेत करते हैं। भक्ति के सभी अंगों में आत्मनिवेदन परक बहुत–सी ऋचाएं हैं। आत्मनिवेदन ही भक्ति की वह शीर्ष बिन्दु हैं जहाँ पहुँचकर भक्त पूर्ण निर्भयता प्राप्त करता है। आत्मनिवेदन को छह भागों में वैष्णवाचार्यों ने विभाजित किया है। अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का त्याग, गोप्तृत्व का वरण, रात्रि का विश्वास, आत्म–निक्षेप और कार्पण्य। इन छहों अगों की सार्थक ऋचाएँ भी वेदों में मिलती है।

(स) प्रतिकूल का त्यागः– भगवत्प्राप्ति में बधिक साधनों का परित्याग किया जाता है। ष्अब मैं इस माया के मार्ग का अवलम्बन नहीं लूँगा। यह तो अत्यन्त दुर्गम है। संसार के ऊपर से लुभावने विषय परिणाम में तो भयंकर होते ही हैं, प्राप्ति के मध्य में भी अतीव भीषण है। संसार के इस टेढ़े–मेढ़े पथ का परित्याग करके अब मैं सीधे सामने के पार्श्व से निकल जाऊँगा। ऐसे सीधे मार्ग पर चलकर ही में उन कार्यों को कर सकूँगा, जो अभी तक अकृत पड़े हैं। आज में विषय–वासनाओं की ओर ले जाने वाले साधनों से युद्ध करूँगा और प्रभु की प्राप्ति कराने वाले साधनों के आगे विनम्र होकर शिक्षा ग्रहण करूँगा। इस मंत्र में प्रतिकूल का त्याग और अनुकूल का संकल्प दोनों ही समाविष्ट हैं।

4.भक्ति भावना की परम्परा और भक्ति का विकास

(अ) परम्परा :–ऋषिवर शाण्डिल्य ने तो ष्भक्तिः प्रमेया श्रुतिभ्यःष अर्थात् भक्ति श्रुति से साक्षात् रूप से जानी जा सकती है कहकर इसका उत्स वेदों को बताया है। डॉ० मुंशी राम शर्मा ने भी भक्ति का उदय वेदों से ही पुष्कल प्रमाणों द्वारा सिद्ध करने का सफल प्रयास किया है। इस तरह हम देखते हैं कि भक्ति मध्ययुग की खोज नहीं बल्कि यह वेदों से उत्पन्न हुई है।

(ब) वेद :– ऋग्वेद में श्विष्णुश शब्द का प्रयोग एक महान शक्ति के रूप में हुआ है। कहीं–कहीं उसे आदित्यवाचक अर्थों में प्रयोग किया गया है और वामनस्वरूप की तीन पग में अखिल ब्रह्माण्ड को मापने वाली घटना का

प्रतीकाधार बताया गया है। प्रातः मध्य और संध्या ही उनके तीन पग हैं। परन्तु यह व्याख्या मान्य नहीं है तीसरे पग को विष्णु का परम पद कहा गया है। इसी पद–प्राप्ति के लिए साधक साधना करते हैं। विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण का एक नाम गोपाल भी है। वेद में निर्भय गोपा शब्द का भी प्रयोग मिलता है।क्षीर सागर वह आकाश गंगा ही है, जिसमें अन्तरिक्ष में व्याप्त विष्णु का निवास बताया जाता है। यही पुराणों में क्षीर सागरशायी लक्ष्मीपति विष्णु की कथाओं का आधार हो गया। विष्णु को कहीं इन्द्र, कहीं इन्द्र का सखा, कहीं अग्नि बताया गया है। इस तरह विविध रूपों एवं नामों में उपासना का आधार होने पर भी वैदिक ऋषियों को एक परम सत्ता की आराधना अभीष्ट थी जो परवर्ती वैष्णव भक्ति के रूप में दिखाई पड़ती है। गोपवेषधारी विष्णु और श्रीकृष्ण मे ऐक्य का और भी स्पष्टीकरण पूर्व मेघदूत में मिलता है। इस प्रकार देखते है कि स्वरूप विकास क्रम में विविध नामों का वाच्य एक ही परमात्मा है। विष्णु और इन्द्र का सखा भाव जीव और ईश्वर के सखाभाव की तरह तात्त्विक मेद न रखता होगा। इन्द्र शब्द सम्पूर्ण लोकों के अधिपति के रूप में प्रयुक्त विष्णु के अर्थ में ही होता होगा। जैसे गीता का वायुर्यमाग्निर्वरुणः शशांक प्रजापतित्ववम प्रपितामहश्वः आदि है। बाद में यज्ञ की नित्य एकता विष्णु के साथ दिखाई पड़ती है। ऐतरेय ब्राह्मण में विष्णु को अग्नि से श्रेठ बताया गया है। ऐतरेय तथा शत्पथ ब्राह्मण में विष्णु की तीन पगों में ही बेलाक्य माप की कथा का स्पष्ट स्वरूप दिखाईपड़ता है। इस तरह विष्णु की सर्वव्यापकता ही परोक्ष रूप से सिद्ध होती है। विष्णु शब्द शविष्लश धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है व्याप्ति। इसीलिए कहा जाता है– 'भूतानि विष्णुः भुवनानि विष्णुः।'

(स) उपनिषद् और भक्तिः– उपनिषद् वेद का ज्ञान काण्ड है। ब्राह्मण ग्रंथों में कर्मकांडों का प्राधान्य रहा। इसके लक्ष्यभूत स्वर्गादि की प्राप्ति से भी बढ़कर साधकों को सहज मोक्ष प्रदातृ भक्ति की प्रशंसा उपनिषदों में मिलती है। ब्रह्मा की प्राप्ति भी केवल ज्ञान से संभव नहीं। उस परमात्मा की प्राप्ति तो स्वयं उसके अपनाने पर ही होती है। भक्ति के लिए गुरु की नितान्त आवश्यकता है। भक्ति सम्प्रदाय में गुरु और भगवान् को एक ही माना गया है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में परमात्मा और गुरु की भक्ति का माहात्म्य बताया गया है। उपनिषदों के ऋषियों ने ज्ञान की सरसता के लिए श्प्रेमश को आवश्यक माना। उन्होंने मक्ति की महिमा जानी। वृहदारण्यक का मधु–विज्ञान और छान्दोग्योपनिषद ने उपासना के अंगो में मक्त को स्थान प्राप्त होगा उनकी सहृदयता के सूचक है

(द) महाभारत में विष्णु भक्तिः– उपनिषद्काल के बाद महाभारतकाल आता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने विष्णु और वासुदेव की एकता तथा वासुदेव भक्ति का प्रारम्भ महाभारतकाल से ही सिद्ध किया है। महाभारत के शान्तिपर्व में विष्णु को ही वासुदेव कहा है। श्रीमद्भगवद्गीता भी महाभारत के भीष्मपर्व में आती है जिसमें स्पष्ट रूप से भगवान श्रीकृष्ण ने भक्ति को सभी साधनों में श्रेष्ठ एवं निरापद बताया है। महाभारत के शान्तिपर्व के अन्तिम अठारह अध्यायों में तथा भीष्म पर्व के नारायणीयोपाख्यान में भागवत सात्वत, नारायण या पांचरात्र धर्म का उल्लेख मिलता है जिसमें वासुदेवोपासना पर जोर दिया गया है।

5. प्रतिनिधि संत कवि :–

(अ) ज्ञानमार्गी संत कवियों की भक्तिः–हिन्दी के सन्त कवि वेदान्त, शांकरदर्शन वैष्णव धर्म, सिद्ध साधना, सूफी सम्प्रदाय और इस्लाम के मौलिक तत्वों को स्वीकार करते हुए एक विश्वधर्म की स्थापना की ओर अग्रसर हुए, जिसका कोई विशिष्ट नाम न देकर ष्हरि को भजे सो हरि का होईष् सिद्धान्त के आधार पर मानवमात्र के लिये धर्म का द्वार खोल रहे थे। हिन्दी का यह सन्तकाव्य दो दृष्टियों से उल्लेखनीय है– एक तो दार्शनिक दृष्टि से और दूसरे साधनात्मक दृष्टि से। दार्शनिक दृष्टि से कबीर, दादू, मलूक और सुन्दरदास का प्रमुख स्थान है और योगियों मे हरिदास, सुन्दरदास और कबीर ही प्रमुख है। यह दोनों वर्ग नाथपंथियों से प्रभावित होने पर भी भक्तिभावना. भावप्रवणता. विरहानुभूति एवं लोक वेतना के कारण वैष्णव भक्त कवियों के समकक्ष रखे जा सकते हैं।रामानन्द इस सन्तमत के प्रतिष्ठापक आचार्य थे। उनका काल चौदहवीं शती का उत्तरार्द्ध माना जाता है। इसलिये इस काल के संतमत का प्रादुर्भाव मानना चाहिये। स्वामी रामानन्द के शिष्य कबीर प्रतिभाशाली दार्शनिक विचारक समाजसुधारक और महाकवि हैं। यद्यपि उनका जीवन विवादास्पद रहा है तथापि अनेक शोधों के आधार पर उनका जीवनकाल 1398 से 1518 ई० तक माना जाता है। श्जाति के जुलाहे ष्मसि कागद छूयो नहीं कलम गही नहि हाथष् वाले कबीर सच्चे अर्थों में जन–नायक थे। भक्तों के चरित्र विवेचकों ने कबीर की महिमा का अनेकशः गुणगान किया है। उनका काल लोदी शासक सिकन्दर लोदी के समकक्ष रखा जाता है। जन्मना अनात, कर्मणा उपेक्षित, निरक्षर कवि कबीर का सारा जीवन ही काव्य बन गया था और इसी स्वानुभूति को जब उन्होंने जनता के समक्ष रखा तो सारी जनता विद्रोही समाज–सुधार औरप्रगतिशील कवि की अनुवर्तिनी बन गई, क्योंकि कबीर आँखिन देखी में विश्वास रखते थे कागद लेखी में नहीं। हिन्दी का समस्त सन्तकाव्य किसी न किसी रूप में कबीर से प्रभावित रहा है। इस अक्खड़

और मुँहफट्ट कवि ने बिना किसी लाग–लपेट के हिन्दू और मुस्लिम उच्चवर्ग पर जो प्रबल प्रहार किये, उससे सारा कुलीन तन्त्र बौखला उठा किन्तु उसके पीछे जो जनशक्ति थी, उसने कबीर को आदर्श मानकर उनका जन–नायकत्व स्वीकार किया। कबीर के पद मौखिक रूप से गाये जाते थे और उनके शिष्यों द्वारा संरक्षित होते थे। यद्यपि आचार्य शुक्ल जैसे आलोचकों ने कबीर के काव्य में शास्त्रीय सौन्दर्य न देखकर उनके काव्यत्व की उपेक्षा कर दी और भाषा को सधुक्कड़ी कह कर ठुकराया, किन्तु स्वानुभूति की जो गहराई और लोकोपमानों के माध्यम से विमाव की जैसी व्यञ्जना कबीर के काव्य में हुई है, वह हिन्दी साहित्य में दुर्लभ है।

- **रैदास :–** ऐसी मेरी जाति विख्यात चमारष कहकर अपने जीवन पर प्रकाश डालते हैं। रैदास साधक कवि थे। काशी–वासी रैदास का जन्म काल भी विवादास्पद है, किन्तु डॉ० भगवत मिश्र उनका काल 1398 से 1448 ई0 मानते हैं। कहा जाता है कि वे मीरा के गुरु थे। रैदास मूलतः सन्त थे और अभिव्यक्ति की अपेक्षा अनुभूति को महत्त्व देने के कारण शास्त्रीय दृष्टि से रैदास भी कबीर की भाँति कम महत्त्व रखते हैं। किन्तु सहज, सरल भावप्रवणता ने रैदास को लोकप्रियता प्रदान की है।
- **भक्त कवि नानकदेवः–** ऐतिहासिक दृष्टि से विशिष्ट महत्त्व रखते हैं, जिनका सम्प्रदाय उत्तर भारत का एक व्यापक संगठन बन गया। नानक (1469 से 1538 ई०) हिन्दी के आत्मचिन्तक भक्त कवि थे। गुरु ग्रन्थ साहिब में उनके बहुत से पद संग्रहीत हैं। वे एक भावनात्मक कवि भी थे।

सन्त कवियों में नाथ पन्थ के निरंजनी कवि हरिदास निरजनी साधनात्मक कवियों में सर्वश्रेष्ठ थे। उनका काल 1455 ई0 ने 1543 ई0 तक माना जाता है। उसका सारा जीवन एक पर्यटक के रूप में बीता। वे वीतरागी सन्यासी कवि थे। सनत सींगा (1519 से 1659 ई०) विचारक सन्त और साधक थे। वे गगा, यमुना तथा तीर्थ आडम्बर से मुक्त थे।हिन्दी सन्त–काव्य परम्परा में कबीर पन्थ के अधिकार दादू पन्थ का विशेष महत्व है। इसके प्रवर्तक सन्त प्रभूदयाल समाज सुधारक और रहस्यवादी कवि थे। दादू (1544 से 1603 ई०) अहमदाबाद में पैदा हुये थे। उनका पन्थ उस युग में बहुत प्रचलित था। उनकी अधिकांश रचनायें ब्रजभाषा में हैं तथा काव्यत्व की दृष्टि से श्रेष्ठ भी हैं। मलूकदास (1574 से 1682 ई०) सन्त कवियों में भाषा एवं काव्यत्व की दृष्टि से उल्लेखनीय कवि हैं। वे प्रारम्भ में सगुणोपासक थे किन्तु कालान्तर में निर्गुण ब्रह्म के साधक बने। उनकी कवितायें ब्रजभाषा और अवधी दोनों में मिलती है। इनके अतिरिक्त सन्त दादू के शिष्य सुन्दरदास (1596 से 1689 ई०) सन्त–काव्य परम्परा के प्रतिभा सम्पन्न कवियों में विशेष महत्व रखते हैं। उनके द्वारा 42 ग्रन्थों की रचना हुई। सुन्दरदास की महत्ता इसी से सिद्ध है कि उन्होंने आचार्य केशव और नन्ददास जैसे कवियों की श्रांगारिकताका घोर विरोध किया है। इन विशिष्ट कवियों के अतिरिक्त रज्जब, बाबरी साहब, सदन, पीपा, सेन जैसे सन्त कवि भी हिन्दी सन्त परम्परा के लोकप्रिय कवि रहे हैं।

(ब) सन्तों की दार्शनिकता :–सन्त–काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि नाथ योगियों से प्रभावित थी। निर्गुणोपासक सन्त कवियों ने वैयक्तिक साधना पर विशेष बल दिया था और उनका ब्रह्म गोरखनात के अलखनिरंजन का प्रतिरूप था। सन्त कवियों ने जीवात्मा और परमात्मा के मध्य माया को बाधक बताया है और इस माया के हटने के बाद ही ईश्वर की प्राप्ति सिद्ध की है। यह निर्गुण ब्रह्म अव्यक्त है और जब तक आत्मा उसके विरह में तडपती नहीं तक तक उसे साक्षात्कार नहीं होता। कबीर का ब्रह्म घट घट व्यापी होने पर भी अनुभवगम्य है। इस ब्रह्म का स्वरूप साधना से ही जाना जा सकता है किन्तु इस साधना के पत में अविद्यामाया बाधक बन जाती है।

6. उपसंहारः–

इस प्रकार, 'भक्ति' तत्व के विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति में भक्ति का महत्व वैदिक काल से है। वैदिक साधना में ज्ञान, कर्म, उपासना तीन मार्गों का उल्लेख मिलता है किन्तु तीनों मार्गों के मूल में आस्था, श्रद्धा और भक्ति अनार्वर्ती है। पुराणों के रचनाकाल के पूर्व चारों पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिए वेद विहित मार्ग ज्ञान, कर्म और उपासना का था। वैदिक वाङमय के विस्तार के बाद कर्मकाण्ड अधिक बढ़ गए तथा ज्ञान मार्ग जटिल हो गया। पुराण काल में ईश्वर के अवतार की परिकल्पना हुई। अवतारवाद के साथ वेदों में संकेतित भक्ति की व्याख्या विस्तार से हुई और श्रीमद्भागवत में भक्ति को सभी मार्गों से श्रेष्ठ सिद्ध किया गया। मोक्ष को भक्ति की तुलना में तुच्छ सिद्ध किया गया। इस प्रकार भक्ति सिद्धान्त की पूर्ण प्रतिष्ठा श्रीमद्भागवत में हुई और भक्ति साधन ही नहीं साध्यहो गयी। भक्ति के विकास की यह पराकाष्ठा थी। भागवतकार ने ही भक्ति के नौ रूपों का विकास किया, जिसे नवधा भक्ति कहा जाता है। नवधा भक्ति साधन मार्ग है, लेकिन इसी के साथ प्रेमाभक्ति का सिद्धान्त गोपी प्रसंग में आया। प्रेमा या रागानुगाभक्ति को साधन नहीं साध्य माना गया। भगवतकार ने श्पोषणं तदनुग्रहःश कहकर भक्ति को ईश्वर की कृपा माना गया। श्रीमद्भागवत में ही भगवान ने 'अहं भक्तं पराधीन' कह कर

भक्त की श्रेष्ठता सिद्ध की। भागवत के साथ प्रस्थान त्रयी में श्रीमद्भगवद्गीता में भी भक्तियोग को सभी योगों से श्रेष्ठ बताया।

संदर्भ ग्रन्थो सूची

1. अंजनी नंदन शरण, विनय पीयूष, पीयूष प्रकाशन, अयोध्या
2. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', वैदेही वनवास, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, 1940 ई०
3. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', प्रियप्रवास, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, सं0 2021 वि०
4. अलका मिश्रा, जयदेव, ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर, 1989 ई०
5. उमाकान्त गोयल, मैथिलीशरण गुप्त के आख्याता, नेशनल पब्लिशिंग हाउस कवि और भारतीय संस्कृति नई दिल्ली. 1964 ई० द्वि०सं०
6. कमलाकान्त पाठक, मैथिलीशरण गुप्त एण्ड पब्लिशर्स, 1960 व्यक्ति और काव्य, प्रिंटर्स
7. गोविन्दराम शर्मा, आधुनिक हिन्दी महाकाव्य, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, 1959
8. जगन्नाथदास 'रत्नाकर', उद्धव शतक, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005
9. जवाहरलाल नेहरू, मेरी कहानी, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली, 2010
10. जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली, 2008
11. डॉ० डी०डी० तिवारी, हिन्दी उपन्यास स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध आया, म पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1985 ई0
12. तुलसीदास, रामचरितमानस
13. दीनदयाल गुप्त, अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन